International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 136-140

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 136-140
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 29-09-2016
Accepted: 30-10-2016

जितेन्द्र कुमार मौर्य
शोधच्छात्र, विकृति विज्ञान (आयुर्वेद)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 पी0एस0 व्याडगी
निर्देशक, एसो0 प्रोफेसर विकृति विज्ञान (आयुर्वेद संकाय) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Correspondence
जितेन्द्र कुमार मौर्य
शोधच्छात्र, विकृति विज्ञान (आयुर्वेद)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चरक संहिता में दीर्घायु : एक अध्ययन

जितेन्द्र कुमार मौर्य, डॉ0 पी0एस0 व्याडगी

दीर्घायु से आशय लम्बी उम्र से है। इस धरा पर जितने भी जीव हैं, सब किसी न किसी रोग से ग्रस्त हैं। अगर हमारी काया रोगों से दूर रहेगी तभी हम सब दीर्घायु को प्राप्त कर सकते हैं। चरकसंहिता में आयु का लक्षण इस प्रकार है–

> शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
> नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्य्यायैरायुरुच्यते।। च0सू0 1/42।।

शरीर, इन्द्रिय, मन व आत्मा के संयोग को आयु कहा जाता है। धारि, जीवित, नित्यग तथा अनुबन्ध आयु के पर्याय हैं।

शरीर
जब माता के गर्भाशय में शुक्र और रज का संयोग, आत्मा के सन्निवेश से एक स्वरूप धारण करता है, तब उसे 'गर्भ' कहा जाता है। जब वायु अलग–अलग उसका विभाग कर अंगों का निर्माण करती है, अग्नितत्त्व उसे परिपक्व बनाता है, जल तत्त्व आर्द्रता भरता है, पृथ्वी रूप प्रदान करती है और आकाश उसे विकसित करता है एवं जब वह गर्भ विकसित होकर हाथ–पैर– घ्राण–कर्ण–नितम्ब आदि अवयवों से संयुक्त हो जाता है, तब उसे शरीर कहते हैं।

इन्द्रिय
इनकी संख्या दश है–

प०च ज्ञानेन्द्रिय	**प०च कर्मेन्द्रिय**
1. श्रोत्र।	1. वाक्।
2. त्वक्।	2. पाणि।
3. चक्षु।	3. पाद।
4. जिह्वा और	4. पायु (गुदा) और
5. घ्राण।	5. उपस्थ।

सत्त्व–
सत्त्व मन को कहते हैं, जो ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय इन दोनों के गुणों से युक्त होने के कारण 'उभयात्मक' है।

आत्मा–
यह चेतन और ज्ञान का प्रतिसन्धाता है। जब तक शरीर, इन्द्रिय और मन के साथ आत्मा का साहचर्य है तभी तक जीवन है, जब आत्मा इनसे अलग हो जाती है तब वह मरण की स्थिति है।
आचार्य चक्रपाणी ने कहा है–

शरीरं प०चमहाभूतविकारात्मकमात्मनो भोगायतनम्।'
1/42।। चक्रपाणी टीका
शरीर प०चमहाभूतों का विकार है, जो आत्मा के भोग का साधन (घर) है। फिर आगे कहते हैं–

> 'अयं च संयोगः संयोगिनः शरीरस्य क्षणिकत्वेन यद्यपि
> क्षणिकस्तथाऽपि संतानव्यवस्थितोऽयमेकतयोच्यते।'

चक्रपाणी टीका 1/42।।
यद्यपि शरीर के क्षणिक होने से आत्मा के साथ उसका संयोग क्षणिक ही होता है, फिर भी जीवन–प्रवाह के व्यवस्थित होने से एक कहा जाता है। उस आयु के पर्यायों को 'धारीत्यादि' के द्वारा बताया गया है–

1. धारयति शरीरं पूतितां गन्तुं न ददातीति धारि
शरीर को धारण करता है, सड़ने नहीं देता इसलिए इसे 'धारि' कहा जाता है।

2. जीवयति प्राणान् धारयति इति जीवितम्
जीवन (प्राणों) को धारण करने के कारण जीवितम् कहा गया है।

3. नित्यं शरीरस्य क्षणिकत्वेन गच्छति इति नित्यगः
प्रतिदिन (प्रत्येक क्षण) जो नष्ट हो उसे नित्यग कहा जाता है, पुरुष की आयु समय के साथ ही कम होती जाती है।

4. अनुबध्नाति आयुरपरापरशरीरादिसंयोगरूपतयेत्यनुबन्धः–
आयु का सम्बन्ध पर, अपर शरीर से सदा लगा रहता है इसलिये इसे अनुबन्ध भी कहा जाता है, अर्थात् जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील शरीर में रहता हुआ क्षीयमाण शरीर से अग्रिम शरीर में अपना सम्बन्ध स्थापित करता रहता है, उसे अनुबन्ध कहते हैं।
मनुष्यों का जीवन एक जैसा नहीं है, क्योंकि वे अपने–अपने पूर्वजन्मकृत कर्म और इस जन्म में किये गये पौरुष के अनुसार फल भोगते हैं। कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई धार्मिक प्रवृत्ति का संयमी व्यक्ति हितकर जिन्दगी जी रहा है, तो दूसरा अमर्यादित, क्रूर व्यक्ति स्वयं और दूसरों के लिए संत्रास और घुटन का अभिशाप उत्पन्न कर रहा है।

आयु के चार प्रकार हैं
(1) हितायु।
(2) अहितायु।
(3) सुखायु और
(4) दुःखायु।

हितायु
सर्वजनहितैषी, दूसरे के धन की इच्छा न रखने वाले, सदा सत्य बोलने वाले, शान्त, विवेकी, सतत, जागरूक, धर्म, अर्थ और काम का सन्तुलन ठीक रखने वाला, पूज्यपूजक, वृद्धजनसेवी, मनोविकार (काम–क्रोध–मद–मान–राग– द्वेष आदि) से रहित, सहिष्णु, स्मृतिमान् और बुद्धिमान् व्यक्ति 'हितायु' होता है।।
(च0सू0 30/24)

अहितायु
दूसरों का अपकारक, तस्कर, उद्धत, अधार्मिक, निर्धन, अज्ञानी, मनोविकारग्रस्त, विषयासक्त, वासना में लिप्त, असहिष्णु, विवेकहीन, स्मृतिभ्रष्ट, बुद्धिभ्रष्ट, द्वेष रखने वाला, क्रोधी, आलसी और कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञानशून्य व्यक्ति 'अहितायु' होता है। (च0सू0 30/24)

सुखायु
शरीर या मानस रोग से मुक्त, युवावस्थासम्पन्न, बल–वीर्य–यश से सम्पन्न, उच्च मनोबल वाला, धन–जन से सम्पन्न, जीवनोपयोगी साधनों से सम्पन्न, सन्तुष्ट और स्वतन्त्र व्यक्ति 'सुखायु' होता है। (च0सू0 30/24)

दुःखायु
रोगी, वृद्ध, असमर्थ, निर्बल, हीन, मनोबल, अन्ध, बधिर, परतन्त्र और साधनहीन व्यक्ति 'दुःखायु' होता है। (च0सू0 30/24)

दीर्घायु बालक के लक्षण

वृत्ते च नामकर्मणि कुमारं परीक्षितुमुपक्रमेतायुषः प्रमाणज्ञानहेतौः।
तत्रेमान्यायुष्मतां कुमाराणां लक्षणानि सन्ति।। (च0 शारीर 8/51)

नामकरण संस्कार कर लेने के बाद बालक की आयु के प्रमाण को जानने के लिये उसके शरीरावयवों की परीक्षा करना प्रारम्भ करना चाहिए। जैसे–

केश

एकैकजा मृदवोऽल्पाः स्निग्धाः सुबद्धमूलाः कृष्णाः केशाः प्रशस्यन्ते। (च0शा0 8/51)

प्रत्येक रोमकूप में से एक–एक केश निकला हो, बात स्पर्श करने पर मुलायम लगते हो, अल्प हो, स्निग्ध अर्थात् रुक्षतारहित हो, जिनकी जड़ सुदृढ़ हो तथा काले वर्ण वाले केश हो। इस प्रकार के लक्षणों वाले केश दीर्घायु की सूचना देते हैं।

त्वचा

स्थिरा बहला त्वक्। (च0शा0 8/51)

स्थिर अर्थात् अपने–अपने अवयवों के ऊपर सुस्थिर तथा मोटी त्वचा अच्छी होती है।

सिर

प्रकृत्याऽतिसंपन्नमीषत्प्रमाणातिवृत्तमनुरुपमातपत्रोपमं शिरः।। (च0शा0 8/51)

अपनी स्वाभाविक आकृति से परिपूर्ण, अपने प्रमाण से कुछ बड़ा होने पर भी शरीर के अनुरूप अर्थात् जो शरीर के अनुपात से बेडौल प्रतीत न हो तथा आतपत्र (छाता) के सदृश अर्थात् बीच में कुछ ऊँचा और चारों ओर से नीचे की ओर को झुका हुआ सिर श्रेष्ठ होता है।

ललाट

व्यूढं दृढं समं सुश्लिष्टशंखसन्ध्यूर्ध्वव्य०जनसंपन्नमुपचितं बलिभमर्धचन्द्राकृति ललाटं।। (च0शा0 8/51)

जो चौड़ा, दृढ़, समतल, शंख प्रदेश की संधियाँ आपस में दृढ़ रूप से सटी हुयी हो, ललाट पर ऊर्ध्वाकार रेखाएँ उभरी हुई हो, ललाट पर केवल त्वचा का आवरण न हो, माथे पर बलियाँ दिखायी हों तथा अर्धचन्द्रमा की आकार वाला ललाट शुभ होता है।

कान

बहलौ विपुलसमपीटौ समौ नीचैर्वृद्धो पृष्ठतोऽवनतौ सुश्लिष्टकर्णपुत्रकौ महाच्छिद्रौ कर्णौ।। (च0शा0 3/51)

दोनों कान जिसके मांसल हो, बड़े, पीछे की ओर समतल भाग वाले, नीचे की ओर समान रूप से बढ़े हुए, पीछे से आगे की ओर झुके हुए, जिसकी कर्ण पुत्रिका दृढ़ रूप से लगी हो तथा जिनकी कर्णगुहा के छिद्र आवश्यकता के अनुसार पूर्ण हो, ऐसे कान शुभ होते हैं।

भौहें

ईषत्प्रलम्बिन्यावसंगते समे संहते महत्यौ भ्रुवौ। (च0शा0 8/51)

दोनों भौहें थोड़ा–सा नीचे की ओर लटकी हों, नाक के ऊपरी भाग के पास भौहें मिली न हों, दोनों समान तथा सुसंगठित, दूर तक फैली हुई अतएव दीर्घ आकार वाली शुभ होती है।

आँखें

समे समाहितदर्शने व्यक्तभागविभागे बलवती
तेजसोपपन्ने ख¨ापा¨ चक्षुषी।। (च0शा0 8/51)

दोनों नेत्र बराबर हों, दृष्टि मण्डल नेत्रगोलकों के भीतर समान एवं सम्यक् रूप से व्यवस्थित हों, नेत्र के अवयवों (दृष्टिमण्डल, श्वेतमण्डल तथा कृष्णमण्डल) का विभाजन ठीक रूप से हुआ हो, आँखें दर्शन शक्ति से सम्पन्न हो, तेज से युक्त हो, नेत्र के अंग–उपांग अच्छे हों, ऐसे नेत्र उत्तम माने जाते हैं।

नासिका

ऋज्वी महोच्छ्वासा वंशसम्पन्नेषदवनताग्रा नासिका।। (च0शा0 8/51)

सीधी, श्वास–प्रश्वास लेने में सरलता का अनुभव होता हो, नासावंश सुन्दर, ईषद् रूप से नासाग्र झुका हो उत्तम माना जाता है।

मुख

महदृजुसुनिविष्टदन्तमास्यम्।। (च0शा0 8/51)

बड़े आकार का, सीधा और मजबूत, सुन्दर दन्तपंक्तिवाला मुख उत्तम होता है।

जिह्वा

आयमविस्तारोपपन्ना श्लक्षणा तन्वा प्रकृतिवर्णयुक्ता जिह्वा।। (च0शा0 8/51)

कफ, शोणित तथा मांस का साररूप जीभ होती है, जो अपनी सामान्य लम्बाई–चौड़ाई से युक्त हो, श्लक्ष्ण (चिकनी) तन्वी (पतली) एवं प्राकृतिक वर्ण वाली हो।

तालु

श्लक्षणं युक्तोपचयमूष्मोपपन्नं रक्तं तालु।। (च0शा0 8/51)

चिकना, उचित उभार वाला, स्वाभाविक गर्मी से युक्त लाल वर्ण से युक्त तालु शुभ होती है।

स्वर

महानदीनः स्निग्धोऽनुनादी गम्भीरसमुत्थो धीरः स्वरः।। (च0शा0 8/51)

महान, दीनता रहित, स्निग्ध, अनुनादिक अर्थात् जिसकी आवाज गूंजती हो, गम्भीर एवं धीर स्वर होना चाहिए।

ओष्ठ–

नातिस्थूलौ नातिकृशौ विस्तारोपपन्नावास्यप्रच्छादनौ रक्तावोष्ठौ।।
(च0शा0 8/51)

होंठ न अधिक मोटे हो न अधिक पतले हों, मुख गुहा को ढकने में समर्थ हों और ये लालिमा युक्त उत्तम होता है।

हनु

महत्यौ हनू।। (च0शा0 8/51)
ठोढ़ी का बड़ा होना उत्तम माना जाता है।

ग्रीवा

वृत्ता नातिमहती ग्रीवा।। (च0शा0 8/51)

गर्दन का गोलाकार होना और अधिक लम्बी न होना उत्तम माना जाता है।

उदर या वक्षःस्थल

व्यूढमुपचितमुरः।। (च0शा0 8/51)

चौड़ी तथा मांसपेशियों से ढकी हुई छाती शुभ होती है।

जत्रु

गूढं जत्रु पृष्ठवंशश्च।। (च0शा0 8/51)
जत्रु का मांस से ढका होना उत्तम है।

स्तन

विप्रकृष्टान्तरौ स्तनौ।। (च0शा0 8/51)

दोनों स्तनों के बीच में (स्वाभाविक रूप से) पर्याप्त दूरी का होना शुभ माना जाता है।

पार्श्व

असंपातिनी स्थिरे पार्श्वे।। (च0शा0 8/51)

कन्धों से नीचे आने वाले क्रमशः पतले और स्थिर पार्श्वों का होना उत्तम है।

बाहु–पैर एवं अँगुलियाँ

वृत्तपरिपूर्णायतौ बाहू सक्थिनी अङ्गुलयश्च।। (च0शा0 8/51)

जिसकी दोनों भुजाएँ, दोनों टांगें और सभी अंगुलियाँ मांस से पुष्ट होने के कारण गोलाकार और अपने अनुपात में लम्बी हों, वे उत्तम होती है।

हाथ–पैर

महदुपचितं पाणिपादं।। (च0शा0 8/51)

जिसके हाथ–पैर आकार में पूर्ण हों और मांस से भरे–पूरे हों, अर्थात् पादतल और करतल का मांसल उत्तम होता है।

नख

स्थिरावृत्ताः स्निग्धास्ताम्रास्तु¨ा मूर्माकाराः करजाः।। (च0शा0 8/51)

स्थिर (ठोस), आकार में गोल, चिकने, तांबे के सदृश लालवर्ण वाले, बीच में उठे हुए कछुए की पीठ की हड्डी जैसे हाथ के नख शुभ होते हैं।

नाभि

प्रदक्षिणावर्ता सोत्स¨ा च नाभिः।। (च0शा0 8/51)

दाहिनी ओर घुमावदार, बीच में गहरी, किनारे जिसके उठे हो, ऐसी नाभि शुभ होती है।

कटि

उरस्त्रिभागहीना समा समुपचितमांसाकटी।। (च0शा0 8/51)

छाती की चौड़ाई से तीन हिस्सा पतली, समतल, समुचित मांसपेशियों से ढकी हुई अर्थात् जो आवश्यकता से अधिक मोटी न हो, वह शुभ होती है।

स्फिच

वृत्तौ स्थिरोपचितमांसौ नात्युन्नतौ नात्यवनतौ स्फिचौ।। (च0शा0 8/51)

दोनों का साधारण रूप से गोलाकार होना, स्थिर (ढीले–ढाले न) होना, मांस से परिपुष्ट होना, न अधिक उठे हुए और न अधिक धँसे हुए होना, ये लक्षण शुभ होते हैं।

उरु

अनुपूर्वं वृत्तावुपचययुक्तावूरुः।। (च0शा0 8/51)

चूतड़ और घुटने के बीच का भाग– दोनों उरुओं का क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर को गोलाकार तथा मांस से पुष्ट होना शुभ है।

जंघा

नात्युपचिते नात्यपचिते एणीपदे प्रगूढ़सिरास्थिसन्धी जङ्घे।। (च0शा0 8/51)

दोनों जाघें हरिणी के पैर जो न अधिक मोटी हो और न अधिक पतली हो, ऐसी जाघें शुभ होती है।

गुल्फ

नात्युपचितौ नात्यपचितौ गुल्फौ।। (च0शा0 8/51)

जो मांसपेशियों से न अधिक मोटे हों और न अधिक कृश, वे गुल्म शुभ होते हैं।

चरण

पूर्वोपदिष्टगुणौ पादौ कूर्माकारौ।। (च0शा0 8/51)

उपर 'पाणिपादम्' द्वारा पाणितल, पादतल का वर्णन किया जा चुका है। यहाँ 'पादौ' शब्द से दोनों पैरों के उपरी भाग का वर्णन प्रस्तुत है। पूर्वोक्त गुणों के साथ पैरों के साथ पैरों का उपरी भाग कछुए की पीठ के सदृश ऊँचा शुभ होता है।

प्रकृतियुक्तानि वातमूत्रपुरीषगुह्यानि तथा स्वप्नजागरणायासस्मितरुदितस्तन– ग्रहणानि, यच्च किञ्चिदन्यदप्यनुक्तमस्ति तदपि सर्व प्रकृतिसम्पन्नमिष्टं विपरीतं पुनरनिष्टम्। इति दीर्घायुर्लक्षणानि।। (च0शा0 8/51)

इस प्रकार जिस बालक में अपानवायु (वात), मूत्र, पुरीष का विसर्जित होना, सोना, जागना, श्रम, मुस्कराना, रोना, हँसना, स्तन से दुग्धपान करना आदि क्रियाएँ अपने स्वाभाविक रूप में होती है। वह बालक उत्तम होता है। अन्य भी शरीर के अंग–प्रत्यंग या स्वाभाविक कर्म यदि स्वाभविक स्थिति में हो तो उत्तम है और ये सब लक्षण दीर्घायु बालक के होते हैं। अगर इसके विपरीत होगा तो अल्पायु के लक्षण हो जायेंगे।

दीर्घायु प्राप्ति के उपाय

स्निग्धस्विन्नशरीराणामूर्ध्वं चाथश्च नित्यशः।
बस्तिकर्म ततः कुर्यान्नस्यकर्म च बुद्धिमान।। (च0सूत्र0 7/47)
यथाक्रमं यथायोगमतं उर्ध्वं प्रयोजयेत्।
रसायनानि सिद्धानि वृष्ययोगांश्च कालवित्।। (च0सूत्र0 7/48)

बुद्धिमान चिकित्सक को चाहिये कि उपर्युक्त महीनों में शरीर का स्नेहन, स्वेदन करके यथा समय ऊपरी तथा निचले अंगों के दोषों को निकालने के लिए वमन, विरेचन, बस्तिकर्म एवं नस्तःकर्म (शिरोविरेचन) का यथाक्रम प्रयोग करें। तदनन्तर कालवित् चिकित्सक सिद्ध रसायनों तथा सिद्ध वीर्यवर्धक योगों का प्रयोग करायें।

रसायन

लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।। (च0चि0 1/1/8)

शरीर में प्रशस्त रस–रक्तादि धातुओं की उपलब्धि जिस उपाय या साधन से हो, उसे रसायन कहते हैं।
सामान्यतः उन औषधों और साधनों को या आचारों को रसायन कहा जाता है, जिससे शरीर रस–रक्तादि सारों से सम्पन्न हों और जिससे उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य स्थापित हो। रसायन का मुख्य कार्य दीर्घायु और उत्तम आरोग्य है। आचार्य डल्हण ने औषध–द्रव्यों में निहित रस–वीर्य–विपाक आदि के लाभोपाय को रसायन कहा है।

आचार रसायन

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्।। (च0चि0 1/4/30)

सत्य बोलने वाले, क्रोध न करने वाले, मदिरा एवं स्त्री के साथ रतिक्रीड़ा न करने वाले, जीवों पर दया करने वाले, आवश्यकता के अनुरूप श्रम करने वाले, जिसका चित्त स्थिर हो गया हो और प्रिय एवं मधुर बोलने वाले दीर्घायु को प्राप्त करते हैं।

जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्।। (च0चि0 1/4/31)

निरन्तर ईश्वर का ध्यान करने वाले, पावन चरित्र वाले, सहनशील, दानशील, तपस्वी, देवता, गो, ब्राह्मण, आचार्य, गुरुजन, वृद्धजन इन सबकी सेवा करने वाले दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

आनृशंस्यपरं नित्यं नित्य करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्।। (च0चि0 1/4/32)

सभी के साथ प्रेम का व्यवहार करने वाले, सदा सब पर दया करने वाले, सही समय पर सोने एवं जागने वाले, सदा दूध और घी का सेवन करने वाले ऐसे मनुष्य दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम्।
शस्ताचारमसœीर्णमध्यात्मप्रवणेद्वियम्।। (च0चि0 1/4/33)

देश तथा काल को जानने वाले, युक्तियों के ज्ञाता, अभिमान न करने वाले, उत्तम आचार–विचार से युक्त, कुण्ठित विचारों से रहित, अध्यात्म ज्ञान को ग्रहण करने में जिसकी इन्द्रियाँ तत्पर हो, ऐसे मनुष्य दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्।। (च0चि0 1/4/34)

जो ज्ञानवान, विद्यावान, तपोवान, धर्मात्माओं तथा जितेन्द्रियों की उपासना करने वाले तथा धर्मशास्त्र के नियमों के अनुसार आचरण

करने वाले होते हैं, ऐसे पुरुष को प्रतिदिन रसायन–सेवन करने वालों के समान समझना चाहिए और वे दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।

रसायन से लाभ

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरूणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्य देहेन्द्रियबलं परम्।।
वाक्सिद्धिं प्रणतिं क्रान्तिं लभते ना रसायनात।। (च0चि0 1/1/7)

रसायन–औषध योगों का सेवन करने से मनुष्य दीर्घजीवन, स्मरणशक्ति, मेधा (धारणा शक्तियुक्त बुद्धि), आरोग्य तरुण अर्थात् (वृद्धावस्था में भी जवान जैसा), कान्ति युक्त आकृति, श्याम–गौर वर्ण, सुरीला स्वर, उदारता, देह तथा इन्द्रियों में उत्तम बल की प्राप्ति, वाक्सिद्धि ऋषि मुनियों की भाँति जो कुछ कह दे उसका सत्य होना, विनयशील (प्रणति) होना, वीर्य की वर्षा करने में समर्थ तथा शरीर में कमनीयता इन सब गुणों को प्राप्त करता है।

न जरां न च दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च।
जग्मुर्वर्षसंहस्त्राणि रसायनपराः पुरा।। (च0चि0 1/1/79)

प्राचीन काल में विधिपूर्वक रसायन का सेवन करने से महर्षिगण हजारों वर्षों तक न बुढ़ापा, न दुर्बलता, न रुग्णता और न मृत्यु को ही प्राप्त हुए।

न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुचे रसायनं यो विधिवन्निषेवते।
गतिं स देवषिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथेतिचाक्षयम्।।
(च0चि0 1/1/80)

जो पुरुष शास्त्रोक्त रसायन का विधिपूर्वक सेवन करता है, उसको इस लोक में दीर्घ आयु की ही प्राप्ति नहीं होती अपितु देवताओं तथा ऋषियों द्वारा सेवित उत्तम गति की भी प्राप्ति होती है और वह अश्रय (अविनाशी) ब्रह्म का भी साक्षात्कार कर लेता है।

उपसंहार

आयुर्वेद यानि 'आयु का ज्ञान'। चरकसंहिता में सबसे पहले आयु को ही प्राथमिकता दी गयी है कि आयु किसे कहते हैं, आयु के क्या पर्याय हैं और आयु कितने प्रकार की होती है, ये सब चरकसंहिता के 'सूत्रस्थान' में वर्णित है। कुमार बालक के शरीर की बनावट के अनुसार चरकसंहिता 'शारीरस्थान' में नख से शिख तक दीर्घायु बालक के लक्षणों का वर्णन है। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि जिस बालक में दीर्घायु के लक्षण न हो तो उस बालक की आयु को भी रसायन, और आचार रसायन आदि औषध द्रव्यों का उचित मात्रा में तथा उचित काल में सेवन कराके उसकी आयु को बढ़ा सकते हैं, क्योंकि दीर्घायु प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य होता है और दीर्घायु प्राप्त करके पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. च0सू0 1/42।।
2. चक्रपाणी टीका 1/42।।
3. चक्रपाणी टीका 1/42।।
4. च0सू0 30/24
5. च0 शारीर 8/51
6. च0सूत्र0 7/47
7. च0सूत्र0 7/48
8. च0चि0 1/1/8
9. च0चि0 1/4/30
10. च0चि0 1/4/31
11. च0चि0 1/4/32
12. च0चि0 1/4/33
13. च0चि0 1/4/34
14. च0चि0 1/1/7
15. च0चि0 1/1/79
16. च0चि0 1/1/80